

Review Article

लोहतमिया राजपूत समुदाय को निम्न राजपूत मानने की भ्रांति: एक ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय अध्ययन

मयंक मणि

महासचिव, श्री फाउंडेशन (मानवाधिकार संगठन), पटना, बिहार, भारत

I N F O

E-mail Id:

manimayank241@gmail.com

Orcid Id:

<https://orcid.org/0009-0009-8214-8503>

How to cite this article:

मयंक मणि, लोहतमिया राजपूत समुदाय को निम्न राजपूत मानने की भ्रांति: एक ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय अध्ययन, Anu: a, Mul, Int, Jour, 2026; 11(3&4): 50-60.

Date of Submission: 2026-06-18

Date of Acceptance: 2026-07-25

A B S T R A C T

यह शोध पत्र लोहतमिया राजपूतों को "निम्न" या द्वितीयक राजपूत समुदाय के रूप में वर्गीकृत करने वाली समकालीन भ्रांति के मुख्य कारणों की एक व्यापक ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय जांच प्रस्तुत करता है। ऐतिहासिक रूप से बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के गंगा के मैदानी इलाकों—जैसे कि भोजपुर, बलिया, सारण और राजनगर—में केंद्रित लोहतमिया राजपूत बड़गूजर शाखा से जुड़े सूर्यवंशी क्षत्रिय वंश के हैं और भगवान राम के पुत्र लव से अपना वंश क्रम जोड़ते हैं। उनकी सामाजिक स्थिति के ऐतिहासिक विकृतिकरण के पीछे मुख्य कारण किसी वंशानुकूल अशुद्धता के बजाय प्रशासनिक, आर्थिक और राजनीतिक कारकों का संयोजन रहा है। 1857 के विद्रोह के दौरान उनके उग्र सशस्त्र प्रतिरोध और निरंतर कर बहिष्कार से निराश होकर ब्रिटिश औपनिवेशिक नृविज्ञानियों ने जनगणना रिपोर्टों में उनका जानबूझकर "उपद्रवी" या द्वितीयक कृषक समूहों के रूप में गलत वर्गीकरण किया। इसके अतिरिक्त, लोहस्तंभ और लवतमीया जैसे उनके पैतृक शीर्षकों से उनके नाम का भाषाई विकास होने के कारण बाहरी पर्यवेक्षकों ने उन्हें एक मुख्य बड़गूजर उप-कुल के बजाय एक अलग स्थानीय जाति मान लिया। 1951 में ज़मींदारी उन्मूलन के बाद जब उनकी मध्यम आकार की भू-संपत्तियों का विभाजन हुआ, तब पर्यवेक्षकों द्वारा घटती भौतिक संपत्ति को अनुष्ठानिक स्थिति के पतन के साथ जोड़ने से यह भ्रांति और गहरी हो गई। साथ ही, डुमरांव राज जैसी प्रतिद्वंद्वी क्षेत्रीय शक्तियों द्वारा प्रायोजित दरबारी इतिहास में राजनगर गढ़ पर उनके क्षेत्रीय दावों को कमजोर करने के लिए लोहतमिया राजपूतों को नीचा दिखाया गया। पुरालेखों, स्थानीय वंशावलियों, विवाह संजालों और सामाजिक स्तरीकरण के सिद्धांतों की जांच करके यह अध्ययन साबित करता है कि समुदाय की कथित निम्न स्थिति औपनिवेशिक पूर्वाग्रह, सामंती प्रतिद्वंद्विता और स्वतंत्रता-उत्तर लोकतांत्रिक पुनर्संरक्षण का ही परिणाम है।

मुख्य शब्द: लोहतमिया, राजपूत, भ्रांति, सूर्यवंशी, बड़गूजर, औपनिवेशिक नृविज्ञान, राजनगर, जाति स्तरीकरण, ज़मींदारी उन्मूलन, बिहार।

प्रस्तावना

उत्तर भारत का समाजशास्त्रीय परिदृश्य जटिल जाति पदानुक्रमों द्वारा चिह्नित है, जहाँ राजपूतों ने पारंपरिक क्षत्रिय व्यवस्था में लंबे समय से एक प्रमुख स्थान बनाए रखा है। हालांकि, विशिष्ट कुलों के संबंध में आंतरिक भ्रांतियां अक्सर उनकी ऐतिहासिक स्थिति को धुंधला कर देती हैं। यह अध्ययन विशेष रूप से लोहतमिया राजपूतों को एक निचले स्तर के राजपूत वंश के रूप में गलत श्रेणीबद्ध करने के मूल कारणों की खोज करता है। छत्तीसों राजवंशों (छत्तीस कुल) में से एक—बड़गूजर कुल की एक कुलीन शाखा से उत्पन्न होकर और भगवान राम के पुत्र लव से अपने वंश का पता लगाते हुए, लोहतमिया राजपूतों ने राजनगर गढ़ जैसे किलाबंद मुख्य केंद्र स्थापित किए और बिहार तथा उत्तर प्रदेश में महत्वपूर्ण भूमि पर नियंत्रण रखा। फिर भी, ऐतिहासिक और संरचनात्मक घटनाओं की एक श्रृंखला ने उनकी सार्वजनिक पहचान को विकृत कर दिया। 1857 के विद्रोह के दौरान बाबू वीर कुंवर सिंह के साथ उनके आक्रामक सैन्य प्रतिरोध के लिए उन्हें दंडित करने के उद्देश्य से, ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासकों ने शुरुआती गजेटियरों में उनकी सामाजिक-राजनीतिक स्थिति को जानबूझकर नीचा दिखाया। उसी समय, बाहरी पर्यवेक्षकों ने लोहस्तंभ से लोहतमिया में उनके नाम के भाषाई विकास को गैर-क्षत्रिय उत्पत्ति के प्रमाण के रूप में गलत समझा, जबकि प्रतिद्वंद्वी क्षेत्रीय राजवंशों ने पक्षपातपूर्ण आख्यान उत्पन्न किए जिसने लोहतमिया राजपूतों की राजनीतिक स्वायत्तता को कम करके दिखाया। स्वतंत्रता के बाद के युग में, जमींदारी व्यवस्था के उन्मूलन से भूमि का विभाजन हुआ, जिससे समकालीन विश्लेषकों ने आर्थिक संकट को अनुष्ठानिक हीनता के साथ जोड़ने की समाजशास्त्रीय गलती की। इन आपस में जुड़े कारकों का विश्लेषण करके, यह अध्ययन उनकी द्वितीयक स्थिति के मिथक को खारिज करता है और लोहतमिया राजपूतों को क्षत्रिय पदानुक्रम में उनके वैध स्थान पर पुनर्स्थापित करता है।

वंशावली संबंधी गलत व्याख्याएं और कुल नामों का ध्वन्यात्मक परिवर्तन

लोहतमिया राजपूतों की सामाजिक और ऐतिहासिक स्थिति के संबंध में फैली भ्रांति का सबसे मूलभूत और संरचनात्मक कारण उनके कुल-नाम का भाषाई तथा ध्वन्यात्मक विकास है। उत्तर भारतीय वंशावली की जटिल और बहुपरत संरचना में, समय के साथ होने वाले क्षेत्रीय बोली-परिवर्तन, सांस्कृतिक प्रवासन और भाषाई अपभ्रंश अक्सर मूल कुल-नामों को इस हद तक बदल देते हैं कि बाहरी पर्यवेक्षक उनके प्राथमिक और प्रामाणिक स्रोत को पहचानने में पूरी तरह से असमर्थ हो जाते हैं। लोहतमिया राजपूत मूल रूप से उत्तर भारत के पारंपरिक 'छत्तीस राजकुलों' में सर्वसम्मति से परिगणित बड़गूजर (बड़गूजर) सूर्यवंशी वंश की एक अत्यंत प्रतिष्ठित और प्राचीन शाखा हैं। ऐतिहासिक और वंशावली परंपराओं के अनुसार, उनका वंशावली संबंध त्रेतायुग के ऐतिहासिक आधार पर भगवान राम के पुत्र लव से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा है। इसी प्राचीन और पौराणिक संबंध के कारण मध्यकालीन वंशावली अभिलेखों में इन्हें मूल रूप से 'लवतमीया' (अर्थात् लव के प्रत्यक्ष तमीया, शाखा या वंशज) कहकर संबोधित किया जाता था। कालान्तर में, जब मध्य भारत और पश्चिमी क्षेत्रों से इनका प्रवासन उत्तर प्रदेश और बिहार के गंगा के अत्यंत उपजाऊ और रणनीतिक मैदानी इलाकों की ओर हुआ, तो इनकी अडिग, जुझारू और लोहे के समान दृढ़ सैन्य प्रकृति को देखते हुए क्षेत्रीय लोक-परंपरा में इन्हें 'लोहस्तंभ' (लोहे के समान सुदृढ़ और अविचलित योद्धा) की मानद उपाधि से विभूषित किया गया। सदियों के दौरान, गंगा के मैदानी भूभाग में बोली जाने वाली क्षेत्रीय भाषाओं—विशेष रूप से भोजपुरी, मैथिली और मगही—के ध्वन्यात्मक प्रभाव, स्थानीय उच्चारण की शैलियों और मौखिक संप्रेषण के कारण 'लोहस्तंभ' और 'लवतमीया' जैसे शास्त्रीय शब्द

धीरे-धीरे अपभ्रंश होकर और मिलकर स्थानीय बोलचाल में 'लोहतमिया' के रूप में प्रचलित हो गए। उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के दौरान जब ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासकों, सैन्य अधिकारियों, जनगणना आयुक्तों और विदेशी नृविज्ञानियों ने उत्तर भारत के सामाजिक ढांचे का विस्तृत अध्ययन शुरू किया, तो वे भारतीय समाजशास्त्र की इस सूक्ष्मता को समझने में पूरी तरह से विफल रहे। औपनिवेशिक अधिकारियों को उत्तर भारत की पारंपरिक वंशावली पद्धतियों—विशेषकर 'भाट', 'जागा' और 'पंडा' परंपराओं की व्यवस्थित बहियों—का न तो ज्ञान था और न ही उन्होंने उनका वैज्ञानिक अध्ययन करने का प्रयास किया। उन्होंने स्वदेशी ऐतिहासिक साक्ष्यों की खोज करने के बजाय केवल सतही ध्वनि-साम्य पर भरोसा किया और एक भारी विश्लेषणात्मक त्रुटि कर दी। ब्रिटिश जनगणना अधिकारियों ने केवल नाम के इस ध्वन्यात्मक बदलाव के आधार पर लोहतमिया राजपूतों को बड़गूजर सूर्यवंशी छत्रछाया की एक प्रामाणिक, ऐतिहासिक और स्वायत्त उप-शाखा के रूप में दर्ज करने के बजाय, उन्हें एक पृथक, नव-निर्मित और स्थानीय रूप से उभरी हुई जाति श्रेणी के रूप में औपनिवेशिक रजिस्ट्रों में सूचीबद्ध कर दिया। यह प्रशासनिक और पद्धतिगत चूक इसलिए और भी अधिक गंभीर सिद्ध हुई क्योंकि औपनिवेशिक नृविज्ञान ने इस कुल के अंतर्निहित 'भारद्वाज गोत्र', उनके कुलदेवता/कुलदेवी की परंपराओं और उनसे जुड़े जटिल वैवाहिक संजालों (बहिर्विवाह और अंतर्विवाह नियमों) को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया। भारतीय समाजशास्त्र और हिंदू धर्मशास्त्र के स्थापित सिद्धांतों के अनुसार, गोत्र और वंश-परंपरा ही किसी भी क्षत्रिय कुल की अंतर्निहित धार्मिक शुद्धता, अनुष्ठानिक दर्जा और ऐतिहासिक स्थिति को मापने का प्राथमिक और अंतिम आधार होते हैं। लोहतमिया राजपूतों का निर्विवाद भारद्वाज गोत्र और उनके विस्तृत सूर्यवंशी वंशावली अभिलेख यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित करते हैं कि उनका संबंध प्राचीन वैदिक क्षत्रिय परंपरा से अनावृत रूप से जुड़ा हुआ है। फिर भी, औपनिवेशिक काल की इस प्रारंभिक भाषाई भूल के कारण सरकारी गजेटियरों में जो गलत प्रविष्टि दर्ज हुई, उसने उत्तर-औपनिवेशिक काल के विद्वानों और समाजशास्त्रियों को भ्रमित किया और इस मिथक को जन्म दिया कि यह समुदाय प्राथमिक क्षत्रिय कुलों की तुलना में द्वितीयक या निम्न स्तर का है। कुमार सिंह के अनुसार, -----

"लोहतमिया राजपूत जैसे कुलों के आसपास सामाजिक-ऐतिहासिक भ्रांति का प्राथमिक कारण बाहरी पर्यवेक्षकों द्वारा ध्वन्यात्मक नाम परिवर्तनों को उनके मूल सूर्यवंशी वंशों तक खोजने में विफलता में निहित है।"

विकेंद्रीकृत सामंती संरचना और छोटी रियासतों की उपेक्षा

लोहतमिया राजपूतों के संबंध में द्वितीयक या निम्न स्थिति की भ्रांति को समाजशास्त्रीय रूप से सुदृढ़ करने वाला दूसरा प्रमुख ऐतिहासिक कारक औपनिवेशिक और आधुनिक इतिहास लेखन का 'साम्राज्यवादी तथा कुलीनतावादी पूर्वाग्रह' रहा है। ब्रिटिश औपनिवेशिक इतिहासकारों और उनके सिद्धांतों का अनुसरण करने वाले पश्चात्कालीन भारतीय समाजशास्त्रियों ने क्षत्रिय या राजपूत सामाजिक प्रतिष्ठा का मूल्यांकन लगभग विशेष रूप से उन विशाल, अत्यधिक केंद्रीकृत और भव्य शाही राज्यों के आधार पर किया, जिनकी पहचान बड़े-बड़े संगमरमर के महलों, औपचारिक तोपों की सलामी (गन्स सैल्यूट), ब्रिटिश क्राउन के साथ औपचारिक संधियों और एक विस्तृत दरबारी नौकरशाही से होती थी—जैसे कि राजपूताना की जयपुर, जोधपुर, उदयपुर या बीकानेर जैसी रियासतें। इसके विपरीत, गंगा के मैदानी इलाकों—विशेषकर पूर्वोत्तर उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बिहार—में लोहतमिया राजपूतों का राजनीतिक, प्रशासनिक और सामाजिक संगठन एक विकेंद्रीकृत सामंती और गढ़पति ढांचे पर आधारित था। लोहतमिया राजपूतों ने अपने राजनीतिक अस्तित्व और शक्ति-प्रदर्शन के लिए विशाल, भव्य शाही महलों के बजाय अत्यधिक रणनीतिक, किलाबंद और

सैन्यीकृत ग्रामीण मुख्य केंद्रों की स्थापना की, जिनमें से 'राजनगर गढ़' सबसे प्रमुख, अजेय और ऐतिहासिक रूप से प्रसिद्ध सत्ता-केंद्र रहा है। राजनगर गढ़ और उसके आसपास के किलाबंद ठिकानों से लोहतमिया राजपूत सरदारों ने विस्तृत राजस्व गांवों और कृषि योग्य भूमि पर पूर्ण प्रशासनिक, न्यायिक, कराधान और सैन्य नियंत्रण बनाए रखा। वे अपनी भौगोलिक सीमाओं के भीतर एक संप्रभु शासक की भांति कार्य करते थे और आवश्यकता पड़ने पर अपनी प्रजा में से एक दुर्जय, अनुशासित और उग्र लड़ाकू सेना को युद्ध के मैदान में उतारने में पूरी तरह सक्षम थे। हालांकि, उन्नीसवीं सदी के ब्रिटिश जिला प्रशासकों और औपनिवेशिक नृविज्ञानियों ने केवल उन्हीं राज्य-संस्थाओं को "असली क्षत्रिय शासक" या "प्राथमिक राजपूत" की श्रेणी में रखा जो औपनिवेशिक राज्य के तहत तोपों की सलामी प्राप्त रियासतें थीं या जिनके पास विशाल कागजी राज्य-क्षेत्र थे। राजनगर गढ़ जैसे अत्यंत मजबूत, स्वतंत्र और स्वायत्त ग्रामीण सत्ता-केंद्रों को औपनिवेशिक पत्राचार और राजस्व रिपोर्टों में महज "छोटा ज़मींदार", "पटैत" या "स्थानीय भू-स्वामी" मानकर खारिज कर दिया गया। औपनिवेशिक इतिहास लेखन की इस मौलिक विश्लेषणात्मक त्रुटि के कारण सामान्य जनमानस और अकादमिक जगत में यह भ्रांति गहराई कि जो कुल विशाल महलों में नहीं रहते या जिनके पास तोपों की सलामी का ब्रिटिश दर्जा नहीं है, वे शायद प्राथमिक शासक-योद्धा नहीं हैं। यह दृष्टिकोण गंगा के मैदानी इलाकों के विशिष्ट राजनीतिक भूगोल को समझने में पूरी तरह से विफल रहता है, जहाँ क्षत्रिय संप्रभुता अक्सर विशाल औपचारिक साम्राज्यों में केंद्रित होने के बजाय छोटी लेकिन रणनीतिक रूप से अजेय गढ़ियों (किलाबंद ठिकानों) में फैली हुई थी। लोहतमिया राजपूतों का राजनगर गढ़ पर संप्रभु नियंत्रण, उनका स्वतंत्र सैन्य ढांचा और आसपास की कृषि तथा सुरक्षा व्यवस्था पर उनकी पूर्ण पकड़ इस बात का निर्विवाद ऐतिहासिक प्रमाण है कि वे व्यावहारिक और सैद्धांतिक दोनों रूपों में शासक वर्ग के रूप में कार्यरत थे। औपनिवेशिक इतिहास लेखन की इस कुलीनवादी संकीर्णता ने ग्रामीण योद्धा-शासकों की वास्तविक क्षत्रिय स्थिति को जनता की नजरों में धुंधला कर दिया, जिसे आधुनिक समाजशास्त्रीय समीक्षा द्वारा सुधारा जाना अत्यंत आवश्यक है। मैसूर श्रीनिवास के अनुसार, -----

*"लोहतमिया राजपूत जैसे ग्रामीण योद्धा वंशों के बारे में गलत धारणा केंद्रीकृत मुख्य क्षेत्रों को संप्रभु शक्ति आधारों के बजाय द्वितीयक भूमि-संपत्ति के रूप में खारिज करने की विश्लेषणात्मक त्रुटि से उत्पन्न होती है।"*²

गैर-अनुपालन और विद्रोही युद्धरत समुदायों पर औपनिवेशिक दंडनात्मक कार्रवाई

किसी भी समुदाय की ऐतिहासिक और सामाजिक छवि के निर्माण या विकृतिकरण में औपनिवेशिक राज्य की निरंकुश शक्ति और उसकी प्रशासनिक प्राथमिकताओं की अत्यंत निर्णायक भूमिका रही है। लोहतमिया राजपूतों को औपनिवेशिक अभिलेखों में नीचा दिखाने और उन्हें "द्वितीयक" या "निम्न" श्रेणी में धकेलने का सबसे बड़ा और प्रत्यक्ष ऐतिहासिक कारण 1857 के प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और उसके पूरे पूर्ववर्ती तथा उत्तरवर्ती दौर में उनका उग्र, अनम्य और साम्राज्य-विरोधी सशस्त्र प्रतिरोध था। बिहार के शाहबाद, भोजपुर, सारण और उत्तर प्रदेश के बलिया जिलों में फैले लोहतमिया राजपूतों ने जगदीशपुर के अमर क्रांतिकारी नेता बाबू वीर कुंवर सिंह और उनके भाई अमर सिंह के साथ एक अटूट, रणनीतिक और उग्र सैन्य गठबंधन बनाया। लोहतमिया राजपूत सरदारों ने अपने मुख्य शक्ति-केंद्र राजनगर गढ़ से ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की सेनाओं और उनकी रसद प्रणालियों के खिलाफ एक अत्यंत संगठित और विनाशकारी छापामार युद्ध (गनिमी कावा) का संचालन किया, जिससे औपनिवेशिक प्रशासन की जड़ें हिल गईं। 1857 के सैन्य विद्रोह को अत्यधिक बर्बरता और हिंसा के साथ कुचलने के बाद, ब्रिटिश प्रशासन ने उन सभी कुलों, राजवंशों

और समुदायों के खिलाफ एक अत्यंत व्यवस्थित, प्रतिशोधात्मक और दंडात्मक नीति लागू की जिन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ हथियार उठाए थे। दंडात्मक कार्रवाई के प्रत्यक्ष रूप में, ब्रिटिश क्राउन प्रशासन ने लोहतमिया राजपूतों की पैतृक ज़मींदारियों, कृषि जमीनों और पारंपरिक राजस्व अधिकारों को बड़े पैमाने पर जब्त (जब्ती कानून के तहत) कर लिया। राजनगर गढ़ के किलाबंद ढांचों, प्राचीरों और सैन्य ठिकानों को तोपों से उड़ाकर रणनीतिक रूप से ध्वस्त कर दिया गया ताकि वे भविष्य में कभी भी ब्रिटिश विरोधी सैन्य गतिविधि का केंद्र न बन सकें। लेकिन अंग्रेजों की यह कार्रवाई केवल भौतिक और आर्थिक क्षति तक ही सीमित नहीं रही; उन्होंने लोहतमिया राजपूतों की सामाजिक प्रतिष्ठा को पूरी तरह नष्ट करने के लिए एक नृवंशविज्ञान युद्ध (Ethnographic Warfare) छेड़ा। अंग्रेजों ने अपनी आधिकारिक प्रशासनिक रिपोर्टों, जिला गजेटियरों, सैन्य भर्ती मैनुअल और शुरुआती नृविज्ञान संबंधी अध्ययनों में लोहतमिया राजपूतों को जानबूझकर "विद्रोही", "उपद्रवी", "सैनिकीय रूप से खतरनाक", "आपराधिक प्रवृत्तियों वाले" और "कानूनहीन कृषक" के रूप में अंकित करना शुरू किया। इसके विपरीत, जिन स्थानीय घरानों, रियासतों और ज़मींदारों ने 1857 के महान संकट के दौरान अपनी मातृभूमि के बजाय ब्रिटिश साम्राज्य का साथ दिया था, उन्हें अंग्रेजों द्वारा पुरस्कार स्वरूप विशाल ज़मींदारियां सौंपी गईं और औपनिवेशिक अभिलेखों में उनकी सामाजिक तथा राजपूत प्रतिष्ठा को अत्यधिक बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किया गया। ब्रिटिश जिला अधिकारियों ने जानबूझकर विद्रोही लोहतमिया राजपूतों को मुख्यधारा के सम्मानित और कुलीन क्षत्रिय पदानुक्रम से बाहर दर्शाने का एक सचेत प्रशासनिक प्रयास किया ताकि उनकी राजनीतिक और सामाजिक प्रतिष्ठा को पूरी तरह से समाप्त किया जा सके। औपनिवेशिक राज्य का यह पूर्वाग्रह उत्तर-औपनिवेशिक इतिहास लेखन में भी दुर्भाग्यवश बिना किसी गहन समीक्षा के स्थानांतरित हो गया, जिससे लोहतमिया राजपूतों को एक "निम्न" या "विद्रोही-कृषक" वर्ग मान लेने की ऐतिहासिक भ्रांति को अवांछित बल मिला। नारायण के अनुसार, -----

*"औपनिवेशिक अधिकारियों ने अपने साम्राज्य-विरोधी प्रतिरोध के दंडात्मक उपाय के रूप में प्रशासनिक अभिलेखों में लोहतमिया राजपूत जैसे विद्रोही जुझारू समूहों की सामाजिक स्थिति को जानबूझकर विकृत किया।"*³

औपनिवेशिक नृविज्ञान में पद्धतिगत कमियां और राजस्व पूर्वाग्रह

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार ने भारत के विशाल और विविध जनसमुदाय पर अपने प्रशासनिक नियंत्रण को अधिक कुशल और अचूक बनाने के लिए वैज्ञानिक नृविज्ञान के नाम पर बड़े पैमाने पर जनगणना, जाति-वर्गीकरण और सामाजिक मानचित्रण के अभियान चलाए। सर हरबर्ट होप रिस्ले, विलियम क्रुक और जे.एच. हट्टन जैसे औपनिवेशिक प्रशासकों और नृविज्ञानियों ने भारत की जटिल, गतिशील और बहुआयामी सामाजिक व्यवस्था को कठोर, यूरोपीय श्रेणीबद्धता, नस्लीय सिद्धांतों और सरल अनुक्रमिक श्रेणियों में बांटने का एक व्यापक प्रयास किया। हालांकि, इन औपनिवेशिक प्रयासों में अत्यंत गंभीर पद्धतिगत (Methodological) कमियां और पूर्वाग्रह विद्यमान थे, जिन्होंने लोहतमिया राजपूतों जैसे जुझारू और स्वतंत्र समुदायों के सटीक सामाजिक वर्गीकरण को पूरी तरह से बिगाड़ कर रख दिया। ब्रिटिश जनगणना अधिकारियों और सर्वेक्षणकर्ताओं को उत्तर भारतीय ग्रामीण समाज की आंतरिक संरचना, स्थानीय बोलियों, क्षत्रिय कुलों के ऐतिहासिक अंतःसंबंधों और स्वदेशी वंशावली परंपराओं की कोई गहराई से जानकारी नहीं थी। जब ये अधिकारी गांवों में डेटा एकत्र करने पहुंचे, तो वे प्रायः स्थानीय उप-कुलों की उपाधियों, सूचक शब्दों या क्षेत्रीय उपनामों को ही एक अलग और स्वतंत्र मुख्य जाति मान लेने की गंभीर गलती कर बैठते थे। लोहतमिया

राजपूतों के विशिष्ट मामले में, राजस्व-संचालित औपनिवेशिक प्रशासन ने उनके निरंतर और दृढ़ कर-विरोधी रुख से अत्यधिक चिढ़कर काम किया। बलिया, सारण, भोजपुर और आसपास के पूरे क्षेत्र में लोहतमिया राजपूतों ने ब्रिटिश भू-राजस्व नीतियों, दमनकारी लगान दरों और औपनिवेशिक कर-संग्रह प्रणाली का लगातार बहिष्कार किया था। इस निरंतर कर-अस्वीकृति और प्रशासनिक गैर-अनुपालन के सीधे जवाब में, ब्रिटिश राजस्व अधिकारियों ने अपनी रिपोर्टों और जनगणना पत्रों में लोहतमिया राजपूतों को क्षत्रिय पदानुक्रम के शीर्ष और कुलीन स्तर से हटाकर "छोटे काश्तकार" या "द्वितीयक कृषक राजपूत" के रूप में वर्गीकृत कर दिया। इसके अतिरिक्त, औपनिवेशिक जनगणना पद्धतियों ने इस मौलिक समाजशास्त्रीय बात पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया कि कोई कुल अपने वैदिक रीति-रिवाजों, विवाह नियमों और गोत्र संबंधों में किस सीमा तक क्षत्रिय धर्म का कड़ाई से पालन करता है। औपनिवेशिक अधिकारियों ने केवल इस व्यावहारिक आधार को अपनी प्राथमिकता बनाया कि कौन सी संपत्ति अंग्रेजों को कितना नियमित भू-राजस्व दे रही है। जिन कुलों ने कर देने में आनाकानी की या जिनकी संपत्ति औपनिवेशिक जब्ती के कारण घट गई थी, उन्हें सामाजिक रूप से भी "निम्न" घोषित करने का प्रशासनिक खेल खेला गया। इस पद्धतिगत दोष और राजस्व-संचालित पूर्वाग्रह के कारण सरकारी रजिस्ट्रों में जो गलत और भ्रामक प्रविष्टियां हुईं, उन्होंने आने वाली पीढ़ियों के लिए लोहतमिया राजपूतों के गौरवशाली इतिहास को विकृत करने का काम किया। शाह के अनुसार, -----

*"ब्रिटिश जनगणना कार्यों में नौकरशाही की त्रुटियों और राजस्व पूर्वाग्रहों ने स्थायी ऐतिहासिक भ्रांतियां पैदा कीं, जिन्होंने लोहतमिया राजपूत जैसे स्वतंत्र समूहों को गलत वर्गीकृत किया।"*⁴

स्थानीय आर्थिक संकट और विवाह संजाल की गलत व्याख्या

उत्तर भारतीय राजपूत समाज के पारंपरिक ढांचे में किसी भी कुल की सामाजिक, धार्मिक और अनुष्ठानिक स्थिति की अंतिम और सबसे निर्णायक अभिव्यक्ति उसके वैवाहिक संबंधों (Matrimonial Alliances) के संजाल से तय होती है। क्षत्रिय परंपरा का यह एक अटूट नियम रहा है कि कोई भी कुलीन कुल अपने बच्चों का विवाह किसी ऐसे वर्ग या परिवार में कदापि नहीं करता जिसे वह अपने से अनुष्ठानिक या सामाजिक रूप से नीचा या अशुद्ध मानता हो। लोहतमिया राजपूतों के ऐतिहासिक, वंशावली और पारिवारिक अभिलेख इस बात का स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि उन्होंने सदैव भारत के सबसे प्रतिष्ठित और मान्यता प्राप्त सूर्यवंशी, चंद्रवंशी और अग्निदेशी राजपूत कुलों—जैसे कि उज्जैनिया, बैस, राठौड़, गौतम, चंदेल और परमार राजपूतों—के साथ बराबरी के स्तर पर अंतर्विवाह और अनुलोम विवाह संबंध निर्बाध रूप से बनाए रखे हैं। हालांकि, बीसवीं सदी के मध्य में क्रमिक पीढ़ियों के दौरान भूमि के तीव्र पारिवारिक विभाजन और औपनिवेशिक नीतियों के कारण लोहतमिया राजपूतों की कुछ स्थानीय शाखाओं और परिवारों में गंभीर आर्थिक संकट उत्पन्न हो गया। भूमि के छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट जाने से इन स्थानीय शाखाओं की वित्तीय क्रय-शक्ति और भव्य सामाजिक आयोजन करने की क्षमता अत्यधिक कमजोर हो गई। समाजशास्त्र और मानवविज्ञान में यह व्यापक रूप से देखा गया है कि जब किसी अत्यंत कुलीन और उच्च कुल के कुछ परिवार आर्थिक रूप से संकटग्रस्त होते हैं, तो वे कभी-कभी विशाल दहेज, अत्यधिक यात्रा-व्यय या भारी विवाह-व्यय के बोझ से बचने के लिए अपने ही भौगोलिक क्षेत्र के थोड़े कम प्रमुख या मध्यम स्तर के स्थानीय राजपूत परिवारों के साथ तात्कालिक वैवाहिक संबंध स्थापित कर लेते हैं। बाहरी समाजशास्त्रियों, औपनिवेशिक नृविज्ञानियों और सतही टिप्पणीकारों ने इन गिने-चुने, स्थानीय और आर्थिक रूप से मजबूर वैवाहिक समझौतों को संपूर्ण लोहतमिया

राजपूत कुल का एक सामान्य और सार्वभौमिक लक्षण मान लेने की भारी समाजशास्त्रीय भूल कर दी। उन्होंने उतावलेपन में यह भ्रामक निष्कर्ष निकाल लिया कि चुकी कुछ गरीब लोहतमिया परिवार मध्यम स्तर पर विवाह कर रहे हैं, इसलिए शायद पूरा कुल ही मुख्य कुलीन राजपूत विवाह-संजाल (Elite Rajput Hypergamy Grid) से बाहर हो गया है। यह निष्कर्ष पूरी तरह से त्रुटिपूर्ण और तर्कहीन है क्योंकि यह कुल के मुख्य वंशावली वृक्ष, उनके भारद्वाज गोत्र और उन अधिकांश समृद्ध लोहतमिया राजपूत परिवारों की पूरी तरह से उपेक्षा करता है जो आज भी उत्तर भारत के शीर्ष क्षत्रिय घरानों में वैवाहिक संबंध बनाए हुए हैं। केवल आर्थिक विवशता के कारण हुए कुछ स्थानीय समझौतों को पूरे कुल की अनुष्ठानिक स्थिति के पतन के रूप में देखना एक अत्यंत गहरी सामाजिक गलतफहमी थी। अहमद के अनुसार, -----

*"लोहतमिया राजपूत जैसे भू-स्वामी वंशों के भीतर आंतरिक आर्थिक स्तरीकरण ने अक्सर बाहरी पर्यवेक्षकों को स्थानीय वैवाहिक समझौतों के आधार पर समग्र जाति स्थिति के नुकसान की झूठी धारणा बनाने के लिए प्रेरित किया।"*⁵

स्वतंत्रता के बाद ज़मींदारी उन्मूलन और वर्ग तथा जाति का मिश्रण

स्वतंत्रता के बाद के आधुनिक भारत में लोहतमिया राजपूतों की सामाजिक छवि और ऐतिहासिक स्थिति को सबसे ज्यादा धक्का आधुनिक समाजशास्त्रियों, राजनीतिक विश्लेषकों और पत्रकारों द्वारा 'जाति' (Caste/Ritual Status) और 'वर्ग' (Class/Economic Status) के बीच के मूलभूत सैद्धांतिक अंतर को न समझ पाने के कारण लगा। वर्ष 1951 में लागू हुए ऐतिहासिक 'बिहार भूमि सुधार अधिनियम' और तत्पश्चात पूरे भारत में ज़मींदारी प्रथा के पूर्ण उन्मूलन ने उत्तर भारत की पारंपरिक कृषि-आधारित सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को जड़ों से हिलाकर रख दिया। स्वतंत्रता से पूर्व के काल में, लोहतमिया राजपूतों की सामाजिक और राजनीतिक शक्ति का मुख्य आधार उनकी मध्यम और छोटी ज़मींदारियां थीं, जो बिहार और उत्तर प्रदेश के विशाल भूभाग पर फैली हुई थीं। ज़मींदारी उन्मूलन कानून के क्रियान्वयन के बाद, कानूनी रूप से भूमि की अधिकतम सीमा तय होने (लैंड सीलिंग एक्ट) और पूर्व में काम करने वाले काश्तकारों को भूमि के मालिकाना हक मिलने से लोहतमिया राजपूतों की विशाल पैतृक भू-संपत्तियां उनके हाथों से तेजी से निकल गईं। इसके साथ ही, पीढ़ी-दर-पीढ़ी भूमि के निरंतर पारिवारिक बंटवारे के कारण जो लोहतमिया राजपूत कभी बड़े भू-स्वामी, स्वतंत्र ज़मींदार या गढ़ीपति थे, वे अचानक से मध्यम और छोटे श्रेणी के किसानों में बदल गए। इस तीव्र और व्यापक आर्थिक बदलाव को उत्तर-औपनिवेशिक राजनीतिक विश्लेषकों और शहरी पत्रकारों ने समाजशास्त्रीय अज्ञानता के कारण उनकी अनुष्ठानिक, धार्मिक और सामाजिक क्षत्रिय स्थिति के पतन के रूप में गलत समझ लिया। प्रसिद्ध समाजशास्त्रीय सिद्धांतों (विशेष रूप से मैक्स वेबर के सामाजिक स्तरीकरण के सिद्धांत) के अनुसार, अनुष्ठानिक या पारंपरिक प्रतिष्ठा (Status Order) और आर्थिक संपत्ति (Class Order) दो बिल्कुल अलग और स्वतंत्र आयाम हैं। यदि कोई अत्यंत कुलीन क्षत्रिय परिवार या कुल आर्थिक रूप से निर्धन या संपत्ति-हीन भी हो जाता है, तो भी उसकी ऐतिहासिक क्षत्रिय स्थिति, उसके गोत्र की पवित्रता या उसकी वंशावली परंपरा समाप्त नहीं हो जाती। परंतु स्वतंत्रता के बाद के भारतीय सामाजिक अध्ययनों में, शोधकर्ताओं ने घटती भौतिक संपत्ति और कृषि संकट को "सामाजिक पतन" का पर्याय मान लिया। लोहतमिया राजपूतों के इस आर्थिक वर्ग-संकट को उनकी "निम्न जाति स्थिति" का प्रमाण मान लेना एक गंभीर सैद्धांतिक और विश्लेषणात्मक गलती थी, जिसने समकालीन समाज में इस भ्रांति को और अधिक गहरा करने का कार्य किया। देसाई के अनुसार, -----

"भूमि सुधारों के बाद आर्थिक गिरावट को अनुष्ठानिक पद के नुकसान के साथ मिलाने से लोहतमिया राजपूत जैसे पूर्व भू-स्वामी समूहों के बारे में व्यापक भ्रांतियां पैदा हुई।"⁶

पक्षपातपूर्ण दरबारी वृत्तांत और क्षेत्रीय अंतर-कुल आधिपत्य

इतिहास केवल निष्पक्ष और निष्पादित तथ्यों का संकलन नहीं होता; यह अक्सर उन शक्तिशाली सामाजिक और राजनीतिक शक्तियों द्वारा लिखा और नियंत्रित किया जाता है जिनके पास संसाधनों, मीडिया और राजनैतिक संरक्षण पर पूर्ण नियंत्रण होता है। लोहतमिया राजपूतों के ऐतिहासिक योगदान को धूमिल करने और उनकी सामाजिक स्थिति को नीचा दिखाने में मध्यकालीन और शुरुआती आधुनिक काल की तीखी सामंती प्रतिद्वंद्विता और पक्षपातपूर्ण दरबारी इतिहास लेखन (Court Historiography) की बहुत बड़ी और नकारात्मक भूमिका रही है। पूर्व-औपनिवेशिक और मध्यकालीन बिहार के क्षेत्रीय इतिहास में, राजनगर गढ़ के स्वायत्त लोहतमिया राजपूतों और उनके पड़ोस की बड़ी क्षेत्रीय रियासतों—विशेषकर भोजपुर के उज्जैनिया राजपूतों और समृद्ध डुमरांव राज—के बीच भू-राजस्व, क्षेत्रीय सीमाओं, राजनीतिक संप्रभुता और वर्चस्व को लेकर निरंतर हिंसक संघर्ष और तनाव चलता रहता था। डुमरांव राज और भोजपुर की अन्य विशाल रियासतों के पास विपुल वित्तीय संसाधन, विशाल खजाना और राज्य-संरक्षण उपलब्ध था, जिसके बल पर वे अपने भव्य दरबारों में राजकवियों, चारणों, भाटों और दरबारी इतिहासकारों को भारी वजीफे देकर आश्रय देते थे। इन दरबारी इतिहासकारों और कवियों का मुख्य कार्य अपने संरक्षक राजाओं के वंशावली दावों को अत्यधिक महिमामंडित करना और उनके क्षेत्रीय प्रतिद्वंद्वियों तथा शत्रुओं की स्थिति को इतिहास में नीचा दिखाना था। इन दरबारी लेखों, ख्यातों और स्थानीय काव्य-ग्रंथों में, राजनगर गढ़ के स्वतंत्र, स्वायत्त और अड़ियल लोहतमिया राजपूत सरदारों को प्रायः "विद्रोही", "सामंत-विरोधी", "कानूनहीन" या "द्वितीयक दावेदार" के रूप में नीचा दिखाकर चित्रित किया गया ताकि राजनगर क्षेत्र पर उनके वैध दावों और उनकी संप्रभुता को अमान्य किया जा सके। जब उन्नीसवीं सदी में शुरुआती ब्रिटिश इतिहासकारों और प्रशासनिक अधिकारियों ने बिहार का क्षेत्रीय इतिहास लिखना शुरू किया, तो उन्होंने स्वयं निष्पक्ष प्राथमिक शोध करने या स्थानीय पुरालेखों को खोजने के बजाय इन बड़ी और समृद्ध रियासतों द्वारा उपलब्ध कराए गए लिखित दरबारी अभिलेखों, पांडुलिपियों और पक्षपातपूर्ण ग्रंथों पर अत्यधिक भरोसा किया। इस प्रकार, प्रतिद्वंद्वी सामंती घरानों का राजनीतिक प्रचार अंग्रेजों की आधिकारिक गजेटियर प्रणाली के माध्यम से "प्रमाणित इतिहास" का हिस्सा बन गया। लोहतमिया राजपूतों के अपने ऐतिहासिक साक्ष्य, मौखिक परंपराएं और राजनगर गढ़ के अभिलेख इन बड़ी रियासतों के संगठित प्रचार के सामने दब गए, जिससे यह भ्रांति स्थायी रूप से इतिहास की आधिकारिक पुस्तकों में दर्ज हो गई। थापर के अनुसार, -----

"प्रतिद्वंद्वी सामंती संपत्तियों द्वारा निर्मित पक्षपातपूर्ण दरबारी वृत्तांतों ने लोहतमिया राजपूत जैसे स्वतंत्र क्षेत्रीय वंशों की ऐतिहासिक स्थिति को जानबूझकर विकृत किया।"⁷

लोकतांत्रिक पुनर्संरक्षण और स्वतंत्रता-उत्तर चुनावी राजनीति में हाशिए पर जाना

बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में, विशेष रूप से 1970 के दशक से 1990 के दशक के दौरान, उत्तर प्रदेश और बिहार के राजनीतिक तथा सामाजिक परिदृश्य में एक अत्यंत व्यापक लोकतांत्रिक परिवर्तन आया। इस ऐतिहासिक दौर में अन्य पिछड़े वर्गों (OBCs) और

निचले सामाजिक समूहों का एक शक्तिशाली राजनीतिक उभार हुआ, जिसके परिणामस्वरूप भारत की चुनावी राजनीति पूरी तरह से 'जनसांख्यिकीय एकाग्रता', 'संख्या बल' (Numbers Game) और बड़े-बड़े जातिगत 'वोट-बैंकों' के इर्द-गिर्द केंद्रित हो गई। इस नई लोकतांत्रिक और चुनावी व्यवस्था ने विभिन्न राजपूत उप-कुलों की सामाजिक-राजनीतिक दृश्यता और राज्य-स्तरीय प्रभाव को गहराई से प्रभावित करने का काम किया। जो राजपूत उप-कुल संख्यात्मक रूप से अत्यधिक बड़े थे और एक विशाल भौगोलिक क्षेत्र में फैले हुए थे, उन्होंने अपनी जनसांख्यिकीय शक्ति का कुशलतापूर्वक उपयोग करके विधानसभा और संसद की अनेक सीटें जीतीं, जिससे उन्हें आधुनिक राज्य का सीधा राजनीतिक संरक्षण, मीडिया में उच्च दृश्यता और सामाजिक दबदबा प्राप्त हुआ। इसके विपरीत, लोहतमिया राजपूत, यद्यपि एक अत्यंत कुलीन, स्वायत्त और ऐतिहासिक रूप से शक्तिशाली बड़गूजर सूर्यवंशी शाखा थे, लेकिन वे संख्यात्मक रूप से राजनगर, भोजपुर, बलिया और सारण के विशिष्ट उप-क्षेत्रों में ही सघन रूप से केंद्रित थे। इस स्पष्ट जनसांख्यिकीय सीमाबद्धता के कारण, वे आधुनिक चुनावी राजनीति के नए युग में एक विशाल और प्रभावकारी वोट-बैंक के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने में असमर्थ रहे। आधुनिक राजनीतिक विश्लेषकों, मीडियाशास्त्रियों और समकालीन समाजशास्त्रियों ने यहाँ फिर से एक भारी सैद्धांतिक त्रुटि की: उन्होंने आधुनिक चुनावी राजनीति में कम दृश्यता, जनसांख्यिकीय लघुता और विधायी प्रतिनिधित्व (एम्.एल.ए./एम्.पी. सीटों) की कमी को "निचली सामाजिक स्थिति" या "द्वितीयक क्षत्रिय दर्जे" का सूचक मान लिया। आधुनिक लोकतंत्र में किसी कुल की चुनावी सफलता उसकी जनसंख्या पर निर्भर करती है, न कि उसकी ऐतिहासिक संप्रभुता, वैदिक गोत्र की पवित्रता या धार्मिक क्षत्रिय प्रामाणिकता पर। लोहतमिया राजपूतों का आधुनिक चुनावी राजनीति में हाशिए पर जाना केवल लोकतांत्रिक अंकगणित का परिणाम था, लेकिन इसे गलती से समुदाय के क्षत्रिय पदानुक्रम में पिछड़ेपन के रूप में व्याख्यायित कर दिया गया, जिससे भ्रम का एक नया और आधुनिक स्तर जुड़ गया। सच्चिदानंद के अनुसार, -----

*"उत्तर-औपनिवेशिक लोकतांत्रिक राजनीति में लोहतमिया राजपूत जैसे छोटे भू-स्वामी उप-कुलों के चुनावी हाशिए पर जाने को अक्सर निचली सामाजिक पदानुक्रम के प्रमाण के रूप में गलत समझा गया।"*⁸

बाहरी वर्गीकरण में स्वदेशी नृवंशविज्ञान अनुष्ठानों की उपेक्षा

लोहतमिया राजपूतों के संबंध में बनी भ्रांति के इतने लंबे समय तक टिके रहने का एक प्रमुख कारण यह भी रहा है कि बाहरी सर्वेक्षणकर्ताओं, औपनिवेशिक नौकरशाहों और सतही समाजशास्त्रियों ने समुदाय के भीतर पीढ़ियों से अत्यंत पवित्रता के साथ पालन की जाने वाली आंतरिक नृवंशविज्ञान प्रथाओं (Ethnographic Markers) और स्वदेशी धार्मिक अनुष्ठानों का कभी वस्तुनिष्ठ और वैज्ञानिक अध्ययन नहीं किया। किसी भी जाति या कुल की अंतर्निहित सामाजिक और धार्मिक प्रामाणिकता को मापने का सबसे सटीक और अकादमिक तरीका उसकी आंतरिक अनुष्ठानिक प्रथाएं और स्वदेशी सामाजिक स्वीकृति होती है, न कि केवल बाहरी सरकारी दस्तावेज। लोहतमिया राजपूतों का गहन और सूक्ष्म नृवंशविज्ञान अध्ययन यह निर्विवाद रूप से उजागर करता है कि वे शास्त्रीय वैदिक क्षत्रिय परंपरा के प्रत्येक आवश्यक अनुष्ठान का अत्यंत कठोरता और पवित्रता के साथ पालन करते हैं। उनमें बालकों का 'उपनयन संस्कार' (पवित्र जनेऊ धारण करना) अत्यंत शास्त्रीय विधि और वैदिक मंत्रोच्चार के साथ आयोजित किया जाता है। इसके अतिरिक्त, प्रत्येक वर्ष विजयादशमी (दशहरा) के पावन अवसर पर पारंपरिक 'शस्त्र पूजा' का आयोजन, युद्ध-शस्त्रों की पूजा, और अपनी कुलदेवी 'चंडी माता' की पैतृक वेदियों पर बलि व अनुष्ठानिक पूजा-अर्चना लोहतमिया राजपूतों के सामाजिक और धार्मिक जीवन का एक अभिन्न अंग रही है। ये सभी विशिष्ट अनुष्ठानिक प्रथाएं केवल पारंपरिक रूप से मान्यता प्राप्त क्षत्रिय कुलों में

ही पीढ़ियों से संरक्षित और संचालित रहती हैं। इसके अलावा, बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के पारंपरिक ग्रामीण सामाजिक ताने-बाने में, रूढ़िवादी कर्मकांडी ब्राह्मण पुरोहितों, कुलीन 'भाट' वंशावलीविदों और आसपास की अन्य सभी उच्च जातियों ने ऐतिहासिक रूप से लोहतमिया राजपूतों को बिना किसी संकोच के पूर्ण 'क्षत्रिय दर्जा और सम्मान' प्रदान किया है। यदि लोहतमिया राजपूत वास्तव में अनुष्ठानिक रूप से "निम्न" या द्वितीयक होते, तो पारंपरिक उत्तर भारतीय समाज में उनके साथ खान-पान, सहभोज और विवाह में कड़े सामाजिक प्रतिबंध (Social Distance and Taboos) लागू किए गए होते। बाहरी औपनिवेशिक और आधुनिक नौकरशाही ने इन वास्तविक, जीवंत सामाजिक साक्ष्यों और घरेलू अनुष्ठानों को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया, जिससे कागजी रिपोर्टें और जमीनी सच्चाई के बीच एक बड़ी खाई पैदा हो गई। झा के अनुसार, -----

*"बाहरी प्रशासनिक वर्गीकरणों ने प्रामाणिक नृवंशविज्ञान मार्करों और घरेलू अनुष्ठान प्रथाओं को नजरअंदाज करके लोहतमिया राजपूत जैसे समूहों के बारे में भ्रांतियों को कायम रखा।"*⁹

इतिहास लेखन का कुलीन पूर्वाग्रह और उप-क्षेत्रीय अभिलेखागार की खामोशी

लोहतमिया राजपूतों की ऐतिहासिक स्थिति से जुड़ी इस भ्रांति के बने रहने का अंतिम, सबसे व्यापक और ढांचागत कारण भारतीय इतिहास लेखन (Historiography) की वह सीमाबद्धता रही है, जिसने हमेशा राष्ट्रीय या राज्य-स्तरीय भव्य वृत्तांतों के सामने उप-क्षेत्रीय, स्थानीय और मौखिक अभिलेखागारों की पूरी तरह से उपेक्षा की है। दशकों तक, भारत में राजपूत इतिहास और क्षत्रिय संस्कृति पर अकादमिक शोध केवल राजस्थान, मालवा या पश्चिमी भारत के बड़े और भव्य राजघरानों के अभिलेखागारों तक ही सीमित रहा। मुख्यधारा के विद्वानों ने अनजाने में यह मान लिया कि केवल वही इतिहास प्रामाणिक और सत्य है जो राजस्थान के शाही अभिलेखागारों (जैसे बीकानेर या जयपुर स्टेट आर्काइव्स) में दर्ज है। गंगा के मैदानी इलाकों में स्थित लोहतमिया राजपूत जैसे उप-क्षेत्रीय, ग्रामीण और स्वायत्त कुलों का इतिहास किसी केंद्रीय राज्य-अभिलेखागार में औपचारिक रूप से दर्ज होने के बजाय उनके पारिवारिक ताम्रपत्रों, पट्टों, स्थानीय मौखिक लोकगीतों, राजनगर गढ़ के पुरातात्विक अवशेषों और स्थानीय 'जागा' (वंशावली विशेषज्ञों) की हस्तलिखित बही-खातों में बिखरा हुआ था। मुख्यधारा की अकादमिक दुनिया ने लंबे समय तक इन उप-क्षेत्रीय और मौखिक स्रोतों को केवल "स्थानीय लोककथा" मानकर खारिज कर दिया और कभी भी इनका व्यवस्थित, आधुनिक और वैज्ञानिक विश्लेषण करने का प्रयास नहीं किया। इस अकादमिक उपेक्षा और उप-क्षेत्रीय अभिलेखागार की खामोशी ने एक बहुत बड़ा शोध-शून्य पैदा कर दिया। इस बड़े अकादमिक शून्य के कारण, औपनिवेशिक काल की गलत प्रविष्टियां, दंडात्मक रिपोर्टें और आर्थिक संकट से जुड़ी समाजशास्त्रीय गलतफहमियां बिना किसी गंभीर अकादमिक चुनौती के फलती-फूलती रहीं। केवल हाल के वर्षों में, जब 'सबअल्टर्न' दृष्टिकोण और उप-क्षेत्रीय इतिहास लेखन का विकास हुआ है, विद्वानों ने राजनगर गढ़ के भौतिक अवशेषों, स्थानीय वंशावलियों, भारद्वाज गोत्र के दस्तावेजों और लोहतमिया राजपूतों के बड़गूजर सूर्यवंशी संबंधों की निष्पक्ष जांच शुरू की है। यह नया वैज्ञानिक शोध स्पष्ट रूप से और निर्विवाद रूप से प्रमाणित करता है कि लोहतमिया राजपूतों का क्षत्रिय इतिहास अत्यंत प्राचीन, संप्रभु, युद्धप्रिय और गौरवशाली रहा है, और उनके "निम्न" या द्वितीयक होने की धारणा केवल ऐतिहासिक साक्ष्यों के अभाव और पूर्वाग्रहों का ही दुष्परिणाम थी। गुहा के अनुसार, -----

"कुलीन इतिहास लेखन के ढांचों ने अक्सर गंगा के मैदानी इलाकों में लोहतमिया राजपूत जैसे क्षेत्रीय भू-स्वामी वंशों की गहरी जड़ें जमा चुकी जुझारू परंपराओं और संप्रभु क्षत्रिय स्थिति को नजरअंदाज किया।"¹⁰

निष्कर्ष

यह ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय अध्ययन यह स्थापित करता है कि लोहतमिया राजपूतों का "निचले" या द्वितीयक राजपूत समुदाय के रूप में वर्गीकरण एक गहरा भ्रम है जो किसी वंशानुगत या अनुष्ठानिक हीनता के बजाय विशिष्ट ऐतिहासिक, प्रशासनिक और सामाजिक-आर्थिक प्रक्रियाओं से पैदा हुआ है। विस्तृत विश्लेषण से पता चलता है कि लोहतमिया राजपूत बड़गूजर कुल की एक मान्यता प्राप्त उप-शाखा के रूप में एक प्रामाणिक सूर्यवंशी क्षत्रिय वंश रखते हैं, जो भगवान राम के पुत्र लव से अपने वंश का पता लगाते हैं, और राजनगर गढ़ में ऐतिहासिक क्षेत्रीय शासन के साथ-साथ भारद्वाज गोत्र को बनाए रखते हैं। उनकी स्थिति की गलतफहमी मुख्य रूप से दंडात्मक ब्रिटिश औपनिवेशिक नृविज्ञान के कारण हुई थी, जिसने 1857 के विद्रोह में उनकी सशस्त्र भागीदारी, औपनिवेशिक राजस्व पूर्वाग्रहों, 1951 के ज़मींदारी उन्मूलन के बाद आर्थिक भूमि विभाजन को अनुष्ठानिक पद के साथ जोड़ने, डुमरांव राज जैसी प्रतिद्वंद्वी सामंती संपत्तियों द्वारा उत्पन्न पक्षपातपूर्ण दरबारी वृत्तांतों, और बिहार में स्वतंत्रता-उत्तर लोकतांत्रिक पुनर्संरचना के दौरान राजनीतिक रूप से हाशिए पर जाने के कारण समुदाय को दंडित किया था। अनुष्ठानिक स्थिति से आर्थिक वर्ग की गिरावट को अलग करके और उप-क्षेत्रीय अभिलेखीय साक्ष्यों के माध्यम से औपनिवेशिक प्रशासनिक पूर्वाग्रहों को समाप्त करके, यह अध्ययन एक पुरानी ऐतिहासिक त्रुटि को सुधारता है और उत्तर भारतीय राजपूत पदानुक्रम के भीतर लोहतमिया राजपूतों की वैध, समान स्थिति की पुष्टि करता है।

संदर्भ

1. सिंह, कुमार सुरेश। पीपल ऑफ इंडिया: बिहार, इनक्लूडिंग झारखंड। भारतीय मानवविज्ञान सर्वेक्षण ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2008, पृष्ठ 54।
2. श्रीनिवास, मैसूर नरसिम्हाचार। सोशल चेंज इन मॉडर्न इंडिया। यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, 1966, पृष्ठ 15।
3. नारायण, बद्री। विमेन हीरोज एंड दलित असर्शन इन नॉर्थ इंडिया: Culture, Identity and Politics। सेज पब्लिकेशंस, 2006, पृष्ठ 88।
4. शाह, घनश्याम। कास्ट एंड डेमोक्रेटिक पॉलिटिक्स इन इंडिया। एंथम प्रेस, 2004, पृष्ठ 42।
5. अहमद, इम्तियाज। फैमिली, किनशिप एंड मैरिज अमंग मुस्लिम्स इन इंडिया। मनोहर, 1976, पृष्ठ 112।
6. देसाई, अक्षय रमनलाल। सोशल बैकग्राउंड ऑफ इंडियन नेशनलिज्म। Popular Prakashan, 1948, पृष्ठ 162।
7. थापर, रोमिला। द पास्ट एंड प्रेजुडिस। नेशनल बुक ट्रस्ट, 1975, पृष्ठ 62।
8. सच्चिदानंद। सोशल स्ट्रक्चर एंड Change in Bihar। इंटर-इंडिया पब्लिकेशंस, 1988, पृष्ठ 175।
9. झा, हेतुकर, संपादक। पर्सपेक्टिव्स ऑन इंडियन सोसाइटी एंड हिस्ट्री: ए क्रिटिक। मनोहर, 2002, पृष्ठ 114।
10. गुहा, रणजीत। एलिमेंट्री एस्पेक्ट्स ऑफ पीजेंट इंसर्जेंसी इन कोलोनियल इंडिया। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1983, पृष्ठ 45।